अध्याय नवाँ

॥श्री गणेशाय नमः॥ श्री सरस्वत्यै नमः॥ श्री सिद्धारूढाय नमः॥

"श्रीसिद्धारूढ़जी के रूप में मानो श्रीशिवजी ही अवतरीत हुए है। उनकी शुद्ध बोधशक्ति से इस भवसागर में डूबने का भय नष्ट होता है। आप आत्मज्ञान देकर अनुपम सुख प्रदान करने वाले दाता है। केवल आप के चरणों में विनम्र भाव से प्रणाम करके भजन तथा संकीर्तन करने से आप हमारी ओर आप की कृपा दृष्टि फेरते हैं।"

सभी प्राणियों पर जो एक समान कृपा करते हैं, पीडित प्राणियों की मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं तथा मुमुक्षुओं को आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए बोध करते हैं, वही श्रीसतगुरुनाथ श्रीसिद्धारूढ़ स्वामीजी है। ऐशोआराम का स्थान पसंद न होने के कारण सिद्धनाथजी किसी को भी कुछ कहे बिना साहूकार के घर से निकल पड़े और गया के मार्ग पर होने वाले एक सुंदर शिवालय में जाकर बैठने का वृत्तांत पिछले अध्याय में कथन किया था। उस समय वहाँ भगवान के लिए गायन वादन की सेवा अर्पण करने का कार्यक्रम चल रहा था। जब गायकों ने भैरवी राग गाया तब सिद्धनाथजी ने कहा, "यह तो श्रीशिवजी की पूजा का समय है इसलिए आप अभी शंकराभरणम् (कर्नाटक संगीत पद्धति में गाए जानेवाला शंकराभरणम् इस राग का समकक्ष हिंदुस्तानी संगीत पद्धति में राग बिलावल कहलवाता है।) राग गाईए।" तब गायकों ने पूछा, "यह राग क्यों गाना चाहिए?" सतगुरुजी ने कहा, "कुंडलिनी (मनुष्य के शरीर में इडा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नब्जें होती हैं। कुंडलिनी यह प्राणशक्ति कुंडलाकार में यानी साँप की गेंडुरी के समान मूलाधार चक्र में सोयी रहती है। मूलाधार में स्थित सुप्त कुंडलिनी शक्ति को जागृत करके, उससे स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नाम के शरीर में स्थित अन्य चक्रों को भेदकर आखिर उसका संयोग सहस्त्रार चक्र के साथ कराना इसी को मोक्षप्राप्ति कहते है।) साँप को ही शंकराभरण कहते है। जब यह कुंडलिनी ऊर्ध्वमुख होकर नाभिस्थान छोड़कर ब्रह्मरंध्र (मनुष्य की खोपडी में होनेवाला सूक्ष्म छिद्र) से मिलती है, तभीं कुंडलिनी जागृत होने का पूर्ण रूप से फल मिलता है।" सतगुरुजी की ये बातें

सुनकर गायकों ने जान लिया की वे एक ब्रह्मवेत्ता है और उन्हें प्रणाम करके पूछा, "कृपा करके हमें बताईए की रागों की उत्पत्ति के स्थान कौन से होते हैं?" संतुष्ट होकर सिद्धनाथजी ने कहा, "अब आप लोग रागों की उत्पत्ति स्थानों के बारे में सुनिए। ईश्वर, सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान्य और तिरंग ये भगवान शिवजी के सात मुख होते हैं। इन सात मुखों से सात स्वर उत्पन्न होते हैं। वे स्वर, षड्ज, ऋषभ, गंधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद होकर सात मुखों से निकले। वहीं सप्तस्वर मनुष्य के शरीर में कंठ, मस्तक (सिर), नासिका, हृदय, मुख, तालू और पूर्वांग इन स्थानों से क्रमश: उद्भव होते हैं। अब इन स्वरों को आलापने का योग्य समय बताता हूँ। ये समय क्रमश: दोपहर, दोपहरे के पश्चात (अपराह्न), सायंकाल (सायाह्न), रात्री का पहला और आखरी पहर (निशा - अवसान) होते हैं। जो कोई इन सप्तस्वरों को उद्भवस्थान में ही लय करके दिखाता है वह ईश्वर की कृपा से ज्ञानप्राप्ति करता है। स्वरों की उपासना ईश्वर के लिए प्रयोग में लानी चाहिए, अगर ये मनुष्य के स्वार्थ के लिए प्रयोग में लायी जाए, तो व्यर्थ होती है।" ये सब सुनकर वे गायक स्तब्ध हो गए। हर्षित होकर उन्होंने सिद्धारूढ़जी को प्रणाम किया। वहाँ से सतगुरुजी निकल पड़े और गयाक्षेत्र पहुँचकर उन्होंने विष्णुपाद के दर्शन किये।

तत्पश्चात वे वैजनाथ क्षेत्र पहुँचे और वहाँ उन्होंने शिवजी की पूजा तथा अभिषेक करने वाले भक्तों को देखा। ये देखकर सिद्धनाथजी मन में बोले की जिस प्रकार सूरज को वंदन (प्रणाम), वायु को गंध, श्रीगणेशजी को दूब पसंद है, उसी प्रकार ईश्वर को अभिषेक पसंद है। स्थूल (जड) शिवलिंग पर स्थूल ही होने वाले जल का अभिषेक ये साधारण लोगों के लिए ही होता है। जब शिवलिंग पत्थर का है यह कल्पना नष्ट होती है, तभीं उस में स्थित ईश्वर तत्व का साक्षात्कार होता है, उसी प्रकार जब जीवात्मा की देहबुद्धि खत्म हो जाती है तब वहीं आत्मबुद्धि (जीव यहीं परमात्मा होकर वहीं जगत का कर्ता और हर्ता है यह समझना, इसे आत्मबुद्धि कहते है।) प्रकट होती है। इसी बात को समझाने के लिए धर्मशास्त्रियों ने इस प्रकार का उपदेश किया है, यह जानकर सिद्धराज वहाँ से आगे निकले और अरुणाचल क्षेत्र पधारे। यहाँ की जाने वाली पूजा वैशिष्ट्यपूर्ण होने के कारण सिद्धनाथजी ध्यान लगाकर सोचने लगे की ये

अरुणाचलेश (सूर्यरूपी ब्रह्म) अन्य कोई भी न होकर मेरी ही ब्रह्मण्य आत्मा है। केवल परमात्मा का स्मरण करने से ('ध्यानादेव तु कैवल्यं' उपनिषद के वचनानुसार) मोक्षप्राप्ति होती है इस शास्त्र के अनुसार सिद्धगुरुजी आत्मध्यान में लीन हो गये। उसके पश्चात पहाड उतरकर नीचे आए और जहाँ गंगा नदी शतमुखों से सागर से मिलती है वह स्थान उन्होंने देखा। भगवान श्रीमहादेवजी की जटाजूटों में स्थित और भक्तिरस से शराबोर हुई गंगा नदी भगीरथ की अद् भुत तपस्या से त्रिभुवन के जीवों को पार लगाने के लिए आयी, यह जानकर सिद्धयति कलकत्त आए और वहाँ महाकाली के दर्शन करके जगन्नाथपुरी पहुँचे| वहाँ उन्होंने नीलचक्र देखकर भगवान के दर्शन किये। वहाँ उन्होंने एक के ऊपर एक सात बर्तन रखकर भोजन पकाते हुए देखा। उसके पश्चात पुजारी ने भगवान को नैवेद्य अर्पण करके वह सभी अतिथियों में बाँटा, इसलिए वहाँ खड़े सिद्धारूढ़जी को भी प्रसाद प्राप्त हुआ। इस जगह पर भोजन को ब्रह्म नाम से संबोधित करते है। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ आया और दो बर्तनों में अन्न खरीदकर वहीं भोजन करने लगा। उसने सिद्धनाथजी को आदर से बुलाकर उन्हें भी भरपेट भोजन दिया, वहाँ अति आदर से भोजन करके सिद्ध आगे निकले।

वहाँ से वे सागर किनारे स्थित कबीरदास के मंदिर गये और वहाँ रहनेवाले संत जनों से भेंटवार्ता की। उन सभी को रामनाम जपते हुए देखकर उन्हें भगवान के नाम की महिमा कथन करने हेतु सिद्धजी ने कहा, "हे भक्त जनों, सुनिए। वाल्मिकी ने रामायण इस काव्य की रचना की। ईश्वर ने उसके तीन हिस्से करके वे त्रिभुवनों में बाँट दिये। केवल 'राम' ये दो अक्षर शेष रह गये। अगर ये अक्षर एक बार उच्चारने से तमाम भोगवस्तुएँ तथा मोक्षप्राप्ति होती हैं। अगर दो बार 'राम, राम' उच्चारने से उस नाम की शक्ति में न्यूनता आती है इसलिए हर एक को वृत्ति तदाकार (यानी ब्रह्मरूप होकर अथवा देहभावरहित होकर) करके और उस वृत्ति से ढले बगैर केवल एक ही बार 'राम' नाम उच्चारना चाहिए, जिस से उस भक्त को आत्मा का साक्षात्कार होता है। उसके बाद अगर फिर एक बार नामोच्चारण करोगे तब तक देहभाव प्राप्त हो जायेगा।" सिद्धनाथजी के ये शब्द सुनकर वे संत हर्षित हुए और उन्होंने सिद्धारूढ़जी की पूजा की। वहाँ से वे आगे गये, कुछ अंतर पार करने के पश्चात

मार्ग में एक नदी आड़े आयी। उस समय उन्होंने नाविक से कहा, "भैया, मुझे नदी के उस पार ले चलो।" उसने कहा, "जिस प्रकार आप पहले भक्ति का सिक्का लेकर अज्ञ लोगों को भवनदी पार कराते है या जो भक्ति का सिक्का नहीं दे पाते उनका जीवन व्यर्थ जाने देते हैं, उसी प्रकार इस नदी के पार ले जाने के लिए मैं भी सिक्का माँगता हूँ। इसलिए उचित सिक्का मुझे दीजिए वर्ना आपकी बिनती व्यर्थ हो जायेगी।" सिद्धारूढ़जी बोले, "सुन रे चतुर नाविक, जो उपाधियों (काम, क्रोध, लोभ, ममता आदि झंझट) भार फेंककर मेरे पास आते हैं, उन से मैं कुछ भी लिए बिना उन्हें भवपार लगाता हूँ। मेरे पास कोई भी उपाधि नहीं है, केवल यह एक लँगोटी जो तुम देख रहे हो, उसे भी निकालकर फेंक देता हूँ, अब तुम मुझे नदी पार ले जाओ।" उसपर लज्जित होकर नाविक ने कहा, "ठीक है, मैं आप से कुछ भी पैसे नहीं लूँगा।" पश्चात नाविक ने आनंदित होकर सिद्धजी को नदीपार पहुँचाया। उस दिन अन्य दिनों की अपेक्षा उसे चौगुना लाभ हुआ, तब वह मन में बोला की निश्चित ही इस महात्मा के सद्‌गुणों के कारण आज मुझे लाभ हुआ है। नाविक ने सिद्धारूढ़जी को एक अच्छा वस्त्र भेंट में दिया, परंतु उन्होंने उसमें से केवल एक लँगोटी के लिए पर्याप्त कपड़ा लिया। उस महात्मा का कठोर वैराग्य देखकर सब लोग दंग रह गये। उसके पश्चात जहाँ दरिद्रता अधिक है ऐसे ओरिसा प्रांत में सिद्धानाथजी ने प्रवेश किया। गरीबी के कारण विशेष रूप से मन कुछ अधिक ही चंचल हो जाने के कारण लोगों की बुद्धि भ्रष्ट होती है और ऐसे समय में वे व्दारपर आए अतिथि को चोर समझकर भगा देते है, यह सब जानते हुए सिद्धनाथजी गाँव में प्रवेश किया बिना जंगल के मार्ग से जाने लगे। मार्ग में चलते हुए अचानक मिले किसी राही ने अगर थोड़ा बहुत अन्न दिया तो उसे स्वीकार कर वे आगे चल रहे थे। अन्यथा बिना अन्नजल उन्होंने कई दिन बिताये। रात्री के समय कडाके की सर्दी का सामना करने के लिए वे स्वयं की सहनशीलता ही ढाँक लेते थे। आगे चलते हुए उन्हें एक बैरागी मिला, जिसने सिद्धनाथजी से कहा, "आगे जब आप छत्तीसगढ जाएँगे तब आप को लंगूरों से बहुत कष्ट होंगे।" अवधूत ने उन्हें उत्तर दिया, "नाशवान् होनेवाले इस शरीर की चिंता (या खेद) करने से क्या लाभ? इस प्रकार हम अपने शरीर को कबतक बचाये रखें? इस नाशवान्

शरीर के अंदर निश्चित रूप से निवास करनेवाली अविनाशी आत्मा को जो पूर्ण रूप से जानता है, उसके सभी दुख नष्ट होते हैं। मन के आईने के सामने जब हमारा देह होता है, तब उस शरीर के नष्ट होने की केवल कल्पना मात्र से हम भयभीत होते हैं। परंतु उसी मन के आईने के सामने जब आत्मा होती है, तब उसमें केवल निर्भयता ही प्रतिबिंबीत होती है। ज्ञानी मनुष्य हमेशा अंतर्मुख होता है क्योंकि उसका सारा ध्यान आत्मा पर केंद्रिभूत होता है, परिणाम रूप से, ऐसे मनुष्य को प्रतिक्षण आत्मा की अनुभूति होने के कारण, जब उसे यमदेवता का भी भय नहीं लगता, तो लंगूरों से उसे कैसा भय?" सिद्धनाथजी जब आगे चल पड़े तो उन्हें असंख्य लंगूर दिखाई पड़े। सिद्धजी को देखते ही वे लंगूर पेडों से कूद कर भागते हुए उनके पास पहुँचे। जब सिद्धनाथजी के पास खाने योग्य पदार्थ न मिलने के कारण वे लंगूर वापस चले गये। तत्पश्चात सिद्धारूढ़जी ने सिंहाचल देखकर बाद में नरसिंह मंदिर देखा। वहाँ भगवान की पूजा करनेवाले भक्तों को मूर्ति को तिलक करते हुए देखकर वे मन में चिंतन करने लगे की जिसके मन में सत वासनाएँ हैं, ऐसा मन भगवान को प्रत्यक्षरूप से देख सकता है। जिस के मन में बुरी वासनाएँ हैं, ऐसे मनुष्य के लिए भगवान अगोचर है, इस बात को समझाने के लिए शास्त्रकारों ने तिलक करने का रिवाज किया है।

उसके बाद मंदिर के बाहर आकर वे गोमुखतीर्थ के पास पलभर बैठे ही थे की उन्होंने कहीं से शोरगुल सुना। आसपास के बहुत लोगों की चहलपहल देखकर उनमें से किसी एक को उन्होंने पूछा, "अरे भैया, यहाँ कौनसा कुतूहल है जो देखने इतने लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं?" उसने कहा, "अजी क्या बताऊँ, कई वर्षों से कुष्ठ से त्रस्त हुआ एक मारवाडी सज्जन, रोग निवारण करने का कोई उपाय न मिलने के कारण, आत्महत्या करने के लिए यहाँ आया हुआ है| पहाड़ से नीचे कूदकर प्राण देने हेतु वह यहाँ आया हुआ जानकर लोग उसे आत्महत्या से परावृत्त करने का प्रयास करने क लिए यहाँ पधारे हैं।" दयालु सिद्धानाथजी ने कहा, "किसी भी प्रकार उसे यहाँ ले आओ, ताकि मैं उसकी भ्रांति नष्ट कर दूँ।" लोग उस सज्जन को तुरंत सिद्धारूढ़जी के पास ले आये। उस मारवाडी को देखकर सिद्धजी ने कहा, "अरे पगले, लगता है की तुम्हे मालूम नहीं है की यह गोमुखतीर्थ अति पवित्र है। इस तीर्थ में स्नान करने से सभी पीड़ाएँ नष्ट हो

जाती हैं।" ऐसा कहते हुए उन्होंने हाथ पकडकर उसे गोमुखतीर्थ में बिठाया और स्वयं अपने हाथों से उसके शरीर पर तीर्थ का पानी डालने लगे। सिद्धारूढ़जी ने "ॐ नरसिंह" कहते ही उसके हृदय में असीम शांती फैल गयी, उसपर उसने भी वही नाम उच्चारने से उसे अति सुख की अनुभूति होने लगी। एक क्षण में उसका कुष्ठ निवारण होता देखकर वह बोला, "यह निश्चित ही नरसिंह (विष्णु का एक अवतार) होगा, जो मेरा उद्धार करने हेतु साधु के भेस में यहाँ आया है।" उसके पश्चात वह सज्जन सिद्धारूढ़जी का हाथ थामकर उन्हें अपने घर ले गया और आसन पर बिठाकर उसने अति प्रेमपूर्वक उनकी षोडशोपचारों से पूजा की। उसपर हाथ जोडकर विनम्र भाव से उसने प्रार्थना की, "हे प्रभू, मैंने आपके चरणों मे मेरा समस्त घरबार, धनदौलत, गृहस्थि और शरीर अर्पण किया है| मुझे आशिर्वाद दीजिए की आपका स्मरण मुझे निरंतर रहे, अन्यथा रोगमुक्त होने के पश्चात मैं फिर से कुष्ठ से त्रस्त हो जाऊँगा।" उसकी बात सुनकर सिद्ध यतिवर्य ने कहा, "मैं जो काम तुम्हे बताऊँ, वह अब तुम करो। तुम निर्भय होकर अपने घर में रहो। तुम्हारी संपत्ति के दो समान हिस्से करो। उसमें से एक हिस्सा गरीबों में बाँट दो, दूसरा हिस्सा तुम्हारें बेटों के लिए रखो। तुम्हारा घर तथा धन मेरा है यह समझकर वर्तन कर और हमेशा तुम्हारा मन श्रीशिवजी के चरणों में लगा दो।" यह सुनकर सज्जन ने सिद्धजी की प्रस्ताव सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। तत्पश्चात यतिवर्य वहाँ से निकलकर विजयनगर-दुर्ग पधारे। वहाँ प्रतापसिंह की गद्दी देखकर समुद्र (सागर) गाँव की बाग में वे बैठे थे की कुछ बैरागी अपनी भिक्षा लेकर वहाँ आये। उसपर पकवानों की रसोई तैयार करके वे भोजन करने ही वाले थे की उन्होंने सिद्धारूढ़जी को देखकर उन्हें भी भोजन के लिए आमंत्रित किया। सिद्धारूढ़जी भोजन करने बैठ गये। उस समय उन्होंने साधुओं को पूछा, "भोजन पेट में जाने के पश्चात, उसका प्राणमार्ग में क्या होता है?" वे बोले, "अन्न वात, पित्त तथा कफ (बलगम) इन मूलतत्वों में परिवर्तित होता है, परंतु उसके पश्चात क्या होता है, ये हम नहीं जानते।" तब सिद्धराज ने कहा, "वेदों में लिखा गया है, 'अन्नमयं ही सोम्य मन:' इस वेदवचन के अनुसार पेट में स्थित अन्न पुरिष्ठ, स्थविष्ठ और अनिष्ठ ऐसे हिस्सों में परिवर्तित होता है। पहला हिस्सा गुदव्दार से बाहर जाता

है, दूसरा हिस्सा मूलतत्वों को स्थापित करता है और तिसरा हिस्सा मन के शांती में परिवर्तित होता है, जो उपासक के काम आती है। यह शांती आत्मा के लिए अनुकूल होने के कारण वह मनुष्य ब्रह्मरूप आनंद का उपभोग लेता है। अगर इस प्रकार उपासक ध्यानधारणा करें तो अन्न देनेवाले का उद्धार होता है। ये सब जाने बिना ही जो भोजन करते हैं, वे स्वयं तो भ्रष्ट होते ही हैं, परंतु उनके साथ अन्नदाता भी अधोगति को प्राप्त होता है।" ये सब सुनकर वे दंग रह गये और भगवान का नाम स्मरते हुए भोजन करने लगे। भोजन के पश्चात वे सभी इकट्ठे होकर आत्मचर्चा करने लगे।

उसके बाद अवधूत वहाँ से निकलकर रामदासजी ने भद्राचल में जीर्णोद्धार किये हुए मंदिर देखकर मन में बोले की परमात्मा की मदद से संत महात्मा चमत्कार करते हैं। वहाँ से वे गोदावरी नदी के किनारे आये। रामदासजी के चबुतरे पर वे निर्विकार भाव से बैठे हुए थे, तब पाँच ब्राह्मण वहाँ पधारे और उन्होंने पूछा, "आप किस प्रदेश आये हैं तथा आपकी स्थिति कैसी है, यह बताईए।" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "जिस देश की कोई सीमाएँ नहीं है उस देश का हूँ और जो सभी का स्थान है, वही हमारा स्थान है, रही बात स्थिति की, तो किसी भी प्रकार की नहीं यहीं हमारी स्थिति है।" ब्राह्मणों ने कहा, "ये कैसे हो सकता है?" उसपर महाराज ने कहा, "शांत चित्त होकर सुनिए। देश, काल तथा स्थिति इनकी सीमाओं में मर्यादित न रहनेवाली आत्मा को, किसी भी देश से क्या फर्क पड़ता है? संपूर्ण विश्व (ब्रह्मांड) यहीं उसकी जगह तथा अनन्य यहीं उसकी स्थिति होती है। केवल जिस के प्रवेश करने से जन्म तथा मृत्यु घटते है उसकी स्थिति का वर्णन कौन कर सकता है?" ऐसा ज्ञानमूर्ति ने कहा। उन ब्राह्मणों के मन में शुद्ध भाव होने के कारण, वे तुरंत संतुष्ट हुए। सिद्धारूढ़जी ने कहा, "आपका मन शुद्ध होने के कारण, इस तत्व को आपने तुरंत स्वीकार किया।" तत्पश्चात सिद्धावधूत कर्नाटक प्रांत की ओर निकले। मार्ग में बहुत तीर्थ देखते हुए वे बेजवाड़े के पास पहुँचे। वे कृष्णा नदी के किनारे बैठे हुए थे, तब एक महिला ने उन्हें अति आदर से प्रणाम किया। हाथ जोड़कर उसने कहा, "महाराज, आपको देखते ही, एक ब्रह्मनिष्ठ साधु के सारे लक्षण आप में दिखाई पड़ते हैं। आपके चेहरे पर शांती की दिव्य प्रभा फैलने के कारण आप महात्मा है

यह प्रतीत होता है। मेरे जैसे अभागी महिला की प्रार्थना स्वीकार करके मेरा उद्धार कीजिए।" तब महाराज ने कहा, "तुम अशुद्ध मन की महिला होने के कारण ब्रह्मोपदेश प्राप्त करने के लिए अपात्र हो, परंतु तुम्हें नाम जपने का अधिकार है। ईश्वर के नाम का उच्चारण करते समय मन में उसी की मूर्ति का चिंतन करने से मन का सा मैल साफ होकर आत्मज्ञान प्राप्त होता है। ये सब छोड़कर अन्य कोई भी उपाय करोगी, तो तुम्हें धन्यता प्राप्त नहीं होगी। आजतक कई लोग केवल नामजप करने से भवसागर पार कर चुके हैं, इसलिए तुम भी नामजप ही करो।" यह सुनकर वह महिला आनंदित हुई और दीन होकर बोली, "महाराज, मैं आपकी कृपा से धन्य हो गई। इसके बाद मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी।" यह कहकर वह महिला सतगुरुजी को प्रणाम करके लौट गई। सदा ही आनंद की वर्षा करने वाले सिद्धारूढ़जी वहाँ तीन बरस तक रहे। उस अवधि में वे नदी किनारे भेडबकरियाँ चरते थे। अगर किसी जगह उन्हें अन्न न मिला तो वहाँ वे बकरियों का दूध पिते थे या नरम मिट्टी खाते थे। इस प्रकार उन्होंने वहाँ दिन बिताये। कडाके की सर्दी तथा प्रखर गरमी शांती से सहते हुए सिद्धारूढ़जी मंगलगिरी गये और वहाँ उन्होंने स्वामीजी का प्रसाद खाया। उसपर भगवान की मूर्तिपर चढ़ाया हुआ किरीट (ताज) अपने मस्तक पर रखकर उन्होंने कहा, "हे भगवान, तुम्हारी जय हो।" यह सुनते ही पुजारी आश्चर्य से दंग रह गया और उसने पूछा, "ये क्या, आप भगवान को ही आशिर्वाद दे रहे हैं?" सिद्धारूढ़जी ने कहा, "इसमें आश्चर्य कैसा? सगुण ब्रह्म के केवल एक अंश में सभी देवदेवताएँ समाएँ होते हैं। स्वयं की देहबुद्धि का पूर्ण रूप से विनाश करके ज्ञानी मनुष्य स्वयं निर्गुण ब्रह्मरूप होते हैं, जो निर्गुण ब्रह्म ही तो सगुण ब्रह्म का मूल स्थान है। इसीलिए ज्ञानी मनुष्य के चरणधूल की मनोकामना स्वयं गंगानदी भी करती है।" सिद्धारूढ़जी की बातें सुनकर पुजारी के मन में विवेक जागृत हुआ। इस प्रकार सिद्धारूढ़जी की जीवनी अद्‌भुत है। केवल जनोद्धार करने के हेतु से उन्होंने पृथ्वीपर भ्रमण किया। अस्तु। जिसका श्रवण करने से सभी पाप भस्म हो जाते हैं, ऐसे इस श्री सिद्धारूढ़ कथामृत का मधुर सा यह नवाँ अध्याय श्री शिवदास श्री सिद्धारूढ़ स्वामीजी के चरणोंमें अर्पण करते हैं। सबका कल्याण हो।

॥ श्री गुरुसिद्धारूढ़चरणारविंदार्पणमस्तु ॥